राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 : 1990 एवं 2000 के पाठ्यक्रम-बदलाव के सम्बन्ध में
(National Policy of Education 1986 in the Context of Curricular Shifts of 1990s and 2000)

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) एक राष्ट्रीय पाठ्यक्रम निर्धारित करके, उसको अनिवार्य रूप से लागू करने की बात करती है। यह नीति 10 + 2 + 03 शिक्षा संरचना को स्वीकार करने की बात करती है। प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा पूरे देश के लिए समान होगी, इसके लिए एक आधारभूत पाठ्यचर्या (Core-Curriculum) होगी। +2 पर प्रतिभाशाली 'छात्र-छात्राओं' को विश्वविद्यालयी शिक्षा के लिए तैयार किया जाएगा और योग्यतानुसार छात्र-छात्राओं को व्यावसायिक शिक्षा प्रदान की जाएगी। +3 पर छात्रों को उच्च ज्ञान प्रदान किया जाएगा जो देश की सांस्कृतिक सुरक्षा और उसके आधुनिकीकरण में सहायक होगा। साथ ही चिकित्सा, न्याय, कृषि, विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था की जाएगी, जिसके द्वारा देश की माँगों की पूर्ति होगी।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति की समीक्षा हेतु आचार्य राममूर्ति की अध्यक्षता में एक 17 सदस्यीय समिति का गठन किया गया। इसे राममूर्ति समीक्षा समिति 1990 कहा जाता है। समिति ने अपनी रिपोर्ट— **बुद्ध एवं मानवीय समाज की ओर'** शीर्षक से 26 दिसम्बर, 1990 को प्रस्तुत की। समिति ने पाठ्यक्रम बदलाव (Curricular Shifts) से सम्बन्धित निम्नलिखित सुझावों को राष्ट्रीय-शिक्षा नीति से जोड़ा किया—

- किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या लड़के-लड़कियों के लिए एक समान होनी चाहिए, तभी लिंग भेद समाप्त किया जा सकता है।
- किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या समाज की माँग के अनुसार होनी चाहिए, प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में विज्ञान एवं गणित को मुख्य स्थान देना चाहिए और साथ में पर्यावरण शिक्षा जैसे प्रकरणों को जोड़ना चाहिए।
- किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या में संज्ञानात्मक विकास के विषय एवं क्रियाओं के साथ-साथ भावात्मक विकास के विषयों एवं क्रियाओं को जोड़ा जाना चाहिए।
- किसी भी स्तर की पाठ्यचर्या में मूल्य-विकास पर स्थान देना चाहिए।
- प्रथम 10 वर्षीय शिक्षा में त्रिभाषा सूत्र के अनुसार तीन भाषाओं की शिक्षा अनिवार्य करनी चाहिए।
- बच्चों के शारीरिक विकास पर ध्यान देना चाहिए और शारीरिक शिक्षा एवं खेलकूद को शिक्षा का अनिवार्य अंग बनाना चाहिए।
- उच्च-शिक्षा के किसी भी पाठ्यक्रम को अद्यतन (Update) बनाना चाहिए।
- प्राथमिक शिक्षा में स्थानीय आवश्यकताओं के अनुकूल नवीन प्रणालियों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।
- उच्च-शिक्षा के पाठ्यक्रम गठन की पूरी प्रक्रिया को विकेन्द्रित करने की सम्भावनाओं की जाँच की जानी चाहिए।

यदि राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में किये गए संशोधनों और उसकी कार्य योजना, 1992 को समग्र रूप से देखा-समझा जाए तो स्पष्ट होगा कि इनसे उसके (1986, राष्ट्रीय शिक्षा नीति) के मूल तत्त्वों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। उनका विस्तार भर हुआ है।

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति एवं पाठ्यक्रम बदलाव (2000) (Curricular Shifts)— राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 में आधार पाठ्यचर्या का अनुपालन पर बल दिए जाने के बावजूद 2000 में

NCERT ने पाठ्यचर्या का प्रारूप प्रस्तुत किया, लेकिन इसके बावजूद प्रान्तीय सरकारें मन
हैं और प्रान्तीय सरकारों का दोषारोपण है कि केन्द्र सरकार क्षेत्रीय स्थिति के अनुसार पाठ
से बाधा डाल रही है।

राष्ट्रीय पाठ्यक्रम प्रारूप (NCF), 2000 निम्नलिखित मुद्दों पर 1986 की राष्ट्री
का समर्थन करता है—

- पाठ्यक्रम सुधार अधिगमकर्त्ता की आवश्यकता के अनुकूल हो।
- सामाजिक आवश्यकता के अनुरूप।
- विज्ञान शिक्षा में सुधार।
- अध्यापक-प्रशिक्षण कार्यक्रम का पुनर्गठन।
- पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति एवं मूल्यों का समावेश।
- विज्ञान एवं तकनीकी शिक्षा पर बल।
- शिक्षा को जीवन कौशलों से जोड़ा जाए।
- पाठ्यक्रम छात्रों में आत्म-नियंत्रण, समयबद्धता, सफाई, आत्म-नियंत्रण, जिम्मेद
  कर्त्तव्यपरायणता, पर्यावरण-सुरक्षा, लोकतानित्रक समानता एवं मूल्यों पर आ
- अधिगम के न्यूनतम स्तरों पर आधारित पाठ्यक्रम (प्राइमरी स्तर पर)।
- माध्यमिक स्तर पर छात्रों में सामूहिकता का विकास करने वाली पाठ्य सह

इस प्रकार उपर्युक्त मुद्दों का अवलोकन करने के पश्चात यह निष्कर्ष निक
शिक्षा नीति (1986), राममूर्ति समिति 1990, योजना कार्यक्रम (Planner Action), 1
प्रारूप 2000—ये सभी शिक्षा को आदर्श स्थिति तक पहुँचाने का माध्यम हैं। ये स
सरकार द्वारा प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप में सरकार द्वारा स्थापित होते हुए भी इनकी
शिक्षक एवं आम नागरिक की भागीदारी अपेक्षित है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1986 : भारत की अर्थ व्यवस्था, 1990-2000 के शिक्षण शास्त्रीय एवं पाठ्यक्रम के बदलाव के सन्दर्भ में

[National Policy of Education, 1986 in the Context of Indian Economy Pedagogic and Curricular Shifts of 1990s and 2000s]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 1986 : भारत की अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में (National Policy of Education, 1986 in Context of Indian Economy)

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् शिक्षा पर जितना व्यय किया गया, क्या उस अनुपात में शिक्षा के फलस्वरूप उत्पादन बढ़ा है? उत्पादन के उत्पादकता के आधार पर चार भिन्न आयाम हैं और हमें चारों ही को ध्यान में रखना होगा। ये चार आयाम इस प्रकार हैं—

(1) प्रत्यक्ष भौतिक उत्पादन—जिसके द्वारा कोई नई वस्तु उत्पन्न होती है अथवा किसी पदार्थ को रूपान्तरित करके उत्पादक बनाया जाता है। कृषि, खनिज, वस्त्र, काष्ठ अथवा धातु निर्माण आदि के अन्तर्गत आते हैं।

(2) उत्पादन सेवाएँ—इसके अन्तर्गत वे सब सेवाएँ आती हैं, जो कि उत्पादन को बढ़ावा देती हैं; जैसे—आयात, निर्यात, यातायात, विनिमय, व्यापार, प्रशासन आदि।

(3) उत्पादन प्रशिक्षण—इसके अन्तर्गत वे सभी प्रशिक्षण आते हैं जो कि उत्पादन को बढ़ाने में सहायक होते हैं।

(4) विचार सृजन—इसके अन्तर्गत वे सभी सृजनात्मक विचार आते हैं, जो कि उत्पादन को नई दिशाएँ प्रदान करते हैं तथा उत्पादन के लिए परोक्ष रूप शक्ति प्रदान करते हैं। शिक्षा राष्ट्रीय निवेश का विचार करते समय ये चारों पक्ष ध्यान में रखने आवश्यक हैं। हमारी राष्ट्रीय आय का कितना प्रतिशत व्यय किया जाए, यह प्रश्न इतना महत्त्वपूर्ण नहीं है, जितना कि शिक्षा को उत्वादोन्मुखी बनाने का। अतः राष्ट्रीय शिक्षा नीति का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू उसे राष्ट्रीय उत्पादन से संयुक्त करना है। शिक्षा पर होने वाले व्यय का औचित्य तभी प्रमाणित किया जा सकता है, जबकि वह "राष्ट्रीय निवेश" हो अतः शिक्षा को राष्ट्रीय उत्पादन से जोड़े जाना आवश्यक है, तभी हम शिक्षा को "राष्ट्रीय निवेश" कह सकते हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने शिक्षा के आर्थिक आयाम को समझते हुए इस बात पर बल दिया है कि हमारे समतावादी उद्देश्यों और व्यावहारिक तथा विकासोन्मुख लक्ष्यों को तभी प्राप्त किया जा सकता है, जबकि इस कार्य के स्वरूप और आयामों के अनुरूप शिक्षा में पूँजी निवेश हो। इसके लिए विभिन्न तरीकों से साधन जुटाये जाएंगे। चंदा इकट्ठा करना, स्थानीय लोगों, की सहायता से रोजमर्रा काम में आने वाली वस्तुओं की पूर्ति करना, उच्च स्तर पर फीस बढ़ाना, उपलब्ध साधनों का बेहतर उपयोग करना, वे संस्थाएँ जो अनुसंधान जनशक्ति के विकास के क्षेत्र में काम कर रही है, अपने काम का उपयोग करने वाली एजेंसियों पर उपकर या प्रभार लगाकर कुछ साधन जुटा सकती हैं। इन एजेंसियों में सरकार और उद्योगों

किया जा सकता है। ये सभी उपाय न केवल राज्य संसाधनों पर बोझ को कम करने के लिए अपितु शैक्षिक प्रणाली में जनता के प्रति जवाबदेही की व्यापक भावना को पैदा करने के लिए होंगे, तथापि, साधनों की समूची वित्तीय आवश्यकता के मुकाबले में इन उपायों से थोड़े ही योगदान हो पाएगा।

वास्तव में सरकार तथा देशवासियों को ही मिलकर इस प्रकार के कार्यक्रमों के लिए वित्तीय जुटाने होंगे, तभी प्रारम्भिक शिक्षा का सार्वजनीकरण, निरक्षरता उन्मूलन एवं मूल्यों के प्रति जागरुकता हो। इन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए शिक्षा को राष्ट्रीय विकास और पुनरुत्थान के लिए लाने का एक अत्यन्त आवश्यक क्षेत्र माना जाएगा।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 1968 में यह निर्धारित किया गया था कि शिक्षा पर होने वाले निवेश को बढ़ाया जाए, ताकि वह यथाशीघ्र राष्ट्रीय आय के 6% तक पहुँच सकें।

भारत की स्थिति विकसित देशों से अभी बहुत पीछे है। दुनिया के शीर्ष 200 विश्व-विद्यालयों सूची में भारत का कहीं नाम नहीं है, गौरतलब है कि दुनिया में कैंब्रिज, ऑक्सफोर्ड व हॉर्वर्ड जैसे स्थान अपने शिक्षण व शोध की गुणवत्ता के कारण ही विश्व में अपना शीर्ष स्थान बनाये हुए है। आज दुनिया के विकसित देश अपनी उच्च-शिक्षा पर अपने कुल बजट का नौ से दस फीसदी तक खर्च कर रहे हैं, परन्तु भारत में राष्ट्रीय आय का एक फीसदी से भी कम उच्च-शिक्षा पर खर्च किया जा रहा है। यह अनुमान स्वतः लगाया जा सकता है कि उच्च-शिक्षा के इतने सीमित बजट में कैसे शिक्षण और शोध की गुणवत्ता को बढ़ाया जा सकता है। भारत में शोध व अध्ययन की गुणवत्ता की तुलना में सारी कवायद वर्ष में छात्रों के प्रवेश, परीक्षा व डिग्री तक ही सीमित रह जाती है। शोध से जुड़े कुछ आँकड़े इस प्रकार हैं—

- भारत में शोध पर कुल जी०डी०पी० का मात्र 0.9 फीसद खर्च किया जाता है,
- चीन में 1.9 फीसद,
- ब्राजील में 1.5 फीसद,
- ब्राजील में 1.3 फीसद,
- दक्षिण अफ्रीका में 1.0 फीसद।

इन्हीं वजहों से राष्ट्रीय उच्च शिक्षा मूल्यांकन परिषद ने भी अपनी रिपोर्ट में साफ किया है कि भारत में 68 फीसदी विश्वविद्यालयों और 90 फीसदी कॉलेजों में उच्च-शिक्षा की गुणवत्ता या तो मध्यम दर्जे की है या दोषपूर्ण है। इन संस्थानों से निकले छात्रों के पास न तो तकनीकी कौशल है और न ही भाषा की दक्षता, यही कारण है कि ऐसे छात्र उचित रोजगार के लायक नहीं पाये गए हैं।

पिछले दो दशकों में देश में शिक्षा का जैसा व्यावसायीकरण हुआ है, उसने तमाम उद्योगपतियों को रातों-रात शिक्षा-विदों में रूपांतरित कर दिया। परिणामतः उच्च शिक्षा का काफी बड़ा हिस्सा पूँजीगत उद्योग में बदलता चला गया और मुनाफा इस कारोबार का बड़ा हिस्सा बनकर उभरा, निश्चित ही देश की उच्च-शिक्षा के मूल्यांकन का यह उचित समय है। हमें आज राष्ट्रीय जरूरतों के अनुरूप उच्च-शिक्षा के ढाँचे को वैश्विक रूप प्रदान करने की महती आवश्यकता है। साथ ही अपनी संस्थाओं को बेहतर बनाने के लिए दीर्घावधि, शोध श्रेष्ठता, शिक्षक-छात्र अनुपात व मानकों के अनुरूप शिक्षकों की अविलंब नियुक्ति जैसे—मुद्दों पर गंभीरता व त्वरित गति से काम करके उच्च-शिक्षा की दशा को सुधारा जा सकता है। इसके लिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में विशेष रूप से विचार-विमर्श हुआ कि विश्वविद्यालयों में शिक्षा का माध्यम क्या रहे तथा माध्यमिक विद्यालयों में भाषा-नीति क्या रखी जाए। इसके लिए अल्पकालिक तथा प्रचार द्वारा शिक्षा पर बल दिया जाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) एवं शिक्षण शास्त्रीय के बदलाव सम्बन्ध में (National Policy of Education (1986) in Context of Pedagogy)

1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने पाठ्यक्रम में बहुत से नये विषयों; जैसे—प्रबन्धन, कौशल-विकास जोड़ने की बात कही है। लेकिन शिक्षा की गुणवत्ता को हर स्तर पर देखना आवश्यक है। शैक्षिक अवसरों के विस्तार तथा गुणवत्ता में वृद्धि करने के लिए व्यापक-परिवर्तन तथा शिक्षक की विधियों में उपयुक्त रूपान्तरण लाने आवश्यक हैं। राष्ट्रीय शिक्षा-नीति ने शिक्षण-शास्त्रीय (Pedagogy) के सम्बन्ध में निम्न बातों पर बल दिया है—

- **प्रादेशिक भाषाएँ**—प्राथमिक और माध्यमिक अवस्थाओं में प्रादेशिक भाषाओं को पहले से ही शिक्षा के माध्यम के रूप में चिन्हित किया जा रहा है। अब उनका प्रयोग विश्वविद्यालयी अवस्था में भी करने के लिए तेजी से कदम उठाए जाने चाहिए।
- **त्रिभाषा सूत्र**—1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति राज्य सरकारों से माध्यमिक स्तर पर त्रिभाषा सूत्र लागू करने की सिफारिश करती है। विश्वविद्यालयों और कॉलेजों में हिन्दी तथा अंग्रेजी के उपयुक्त पाठ्यक्रमों की सुविधा में भी होनी चाहिए, ताकि छात्र इन भाषाओं में प्रवीणता प्राप्त कर सकें एवं शिक्षक इन माध्यमों से पढ़ाने की विधियाँ विकसित कर सकें।
- **हिन्दी, संस्कृत एवं अन्तर्राष्ट्रीय भाषाओं पर बल**—भारतीय भाषाओं के विकास में हिन्दी एवं संस्कृत के विशेष महत्त्व को देखते हुए और देश की सांस्कृतिक एकता के लिए, उसके अपूर्व योगदान की दृष्टि स्कूल तथा विश्वविद्यालय स्तर पर इन भाषाओं के अध्यापन की सुविधाएँ अधिक विस्तृत पैमाने पर की जानी चाहिए इन भाषा के अध्यापन के नये तरीकों के विकास को प्रोत्साहन देना चाहिए।
- **कार्यानुभव और राष्ट्रीय सेवा**—स्कूलों और समुदायों को एक साथ लाने के लिए, अध्यापन विधियों का पुर्नरीक्षण करने की आवश्यकता है। तदनुसार कार्यानुभव तथा राष्ट्रीय सेवा जिसमें सामुदायिक सेवा तथा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के सार्थक तथा चुनौतीपूर्ण कार्यक्रम भी शामिल हैं, शिक्षा के अभिन्न अंग होने चाहिए।
- **पत्राचार पाठ्यक्रम**—अल्पकालिक शिक्षा तथा पत्राचार पाठ्यक्रम विश्वविद्यालय स्तर पर बड़े पैमाने पर विकसित किए जाने चाहिए।
- **शिक्षा की विधियों का निर्धारण अध्यापक द्वारा**—शिक्षा की सांस्कृतिक उन्नति के लिए लिखित एवं मौखिक दोनों विधियों को प्रयोग में लाया जाए।
- **अध्यापकों का प्रशिक्षण**—प्राथमिक विद्यालय के अध्यापकों के प्रशिक्षण हेतु कुछ चयनित संस्थाओं को जिला-शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान (DIET) के रूप में विकसित किया जाए। यह पाठ्यक्रम एवं शिक्षण-विधियों के निर्धारण तथा अनुदेशकों के प्रशिक्षण के लिए उत्तरदायी होगा, जो कि जिला शिक्षा बोर्ड के अधीन होगा।

इस प्रकार राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) ने महिलाओं, अनुसूचित जातियों, अल्पसंख्यकों, विकलांगों, प्रौढ़ शिक्षा को प्रोत्साहित करने के लिए विशेष विधियों के प्रयोग की सिफारिश की है राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान प्रशिक्षण कार्यक्रमों तथा अल्पसंख्यक संस्थाओं में उपचारात्मक शिक्षण की व्यवस्था भी की जाएगी। न्यूनतम अधिगम स्तर को प्राप्त करने हेतु शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करने के लिए बाल-केन्द्रित दृष्टिकोण एवं क्रिया आधारित विधि अपनायी जायें।